राजेन्द्र यादव के उपन्यास एवं कहानियों में व्यक्त समीक्षा चिन्तन

✧ डॉ. कृष्णबीर सिंह

अज्ञेय ने लिखा है, ''कहानी पर विश्वास करो, कहानीकार पर मत करो। नहीं तो कहानी क्यों लिखता, बिना कहानी के ही निरी व्याख्या क्यों न लिख डालता।''[1] अपने 'नदी के द्वीप' उपन्यास के संदर्भ में उन्होंने अपनी बात को और भी स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''उपन्यास में उपन्यासकार को जो कहना है, वह उपन्यास से ही प्राप्त होना चाहिए, न सिर्फ होना चाहिए, उपन्यास से ही हो सकता है नहीं तो फिर उपन्यासकार ने वह कहा ही नहीं है।''[2] लेखक अपनी बात रचना के माध्यम से भी पाठकों तक पहुँचाता है। इस तथ्य को स्वयं राजेन्द्र यादव ने दूसरी तरह स्वीकार किया है, ''मेरा वही व्यक्तित्व वास्तविक है जो रचनाओं में है, जो वहाँ नहीं है, वह महत्त्वपूर्ण भी नहीं है क्योंकि अपने लेखन व्यक्तित्व में मैं अकेला हूँ, जो कुछ है वह मुझसे गुजरकर है।''[3] अपनी अवधारणा को और भी पुष्ट करते हुए वे कहते हैं, ''कलाकार का व्यक्तित्व, उसका परिचय, उसका विश्वास और उसकी प्रतिबद्धता-सभी कुछ उसकी कला होती है। जो कुछ वहाँ नहीं है, उसका महत्त्व और मूल्य क्या, क्यों हो?''[4]

राजेन्द्र यादव ऐसे सजग रचनाकार हैं जो अपनी कथा रचनाओं में अपने विचारों को अपने पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। जैसे राजेन्द्र यादव के हिन्दू धर्म सम्बन्धी विचार (जो वे 'हंस' की सम्पादकीय टिप्पणियों में व्यक्त कर रहे हैं।) 'कोई नये नहीं है' जिन लोगों ने 'सारा आकाश' उपन्यास पढ़ा है और उसके तहत जिन्होंने शिरीष और समीर के संवादों पर गौर किया है, वे समझ सकते हैं कि राजेन्द्र यादव के ये विचार उनके सठियाये दिमाग की उपज नहीं, बल्कि तारुण्य के उत्साहजनक विचार है।[5]

राजेन्द्र यादव की रचनाओं में जीवन की प्रत्येक समस्या पर उनके पात्र बोलते हैं। उनके पात्रों के विचार प्रकारान्तर से राजेन्द्र यादव के ही विचार है। ''उन्होंने कलाकार पात्रों के माध्यम से कला एवं कलाकार के सम्बन्ध में पर्याप्त चिन्तन किया है। हिन्दी के किसी भी लेखक की तुलना में उनके साहित्य में कलाकार पात्रों की संख्या अधिक है। लगभग उनकी एक षठांश कहानियाँ कलाकार पात्रों से सम्बन्धित है। इसी प्रकार 'शह और मात' तथा 'एक इंच मुस्कान' उपन्यासों के केन्द्रीय पात्र कलाकार है।''[6] स्पष्ट है कि ये कलाकार पात्र कला के विविध आयामों पर अपने जो विचार व्यक्त करते हैं उनसे राजेन्द्र यादव की आलोचना दृष्टि का आभास हो जाता है।

कलाकार का व्यक्तित्व–कलाकार का चरित्र अपने आप में बहुत जटिल होता है किन्तु प्राय: कलाकार को एक शिक्षित व्यक्तित्व वाला प्राणी समझ लिया है। उसके बारे में एक भ्रम प्रचलित हो जाता है कि कलाकार को 'एक पत्नी, एक प्रेयसी, एक प्रेरणा न जाने कितनी-कितनी लड़कियाँ चाहिए।'[7] 'शह और मात' की रेखा सुजाता को इसी दृष्टि से उदय, जो एक कलाकार है, की ओर से सचेत करने का प्रयत्न करती है। किन्तु शायद राजेन्द्र यादव कलाकार के व्यक्तित्व को शिथिल नहीं मानते।

1. उन्मुक्तता–किन्तु यह जरूर स्वीकार करते हैं कि कलाकार एक उन्मुक्त प्राणी होता है, उसे किसी प्रकार का बंधन स्वीकार नहीं होता। 'एक इंच मुस्कान' की अमला अमर से कहती है कलाकार बंधकर नहीं रहता। वह तो एक उन्मुक्त धारा है....एक धरती उसे बाँध लेगी तो वह धार कहाँ रह जाएगी? पोखर और तालाब हो जाएगी और पानी वहीं सड़ेगा।[8] कलाकार तो विवाह तक को एक बंधन मानता है क्योंकि विवाह भी अपने आप में एक समझौता है हर प्रकार का समझौता कला को भ्रष्ट करता है।[9] इस भ्रष्ट करने के पीछे उनकी यह धारणा भी काम कर रही प्रतीत होती है, ''कला सबसे ज्यादा ईर्ष्यालु पत्नी है।''[10]

राजेन्द्र यादव ने अपने जीवन में आजीविका के लिए कोई नौकरी या कोई व्यवसाय स्वीकार नहीं किया। यह उनकी दृढ़ मान्यता है कि लेखक के लिए आजीविका के बंधन भी वरेण्य नहीं है, इससे उसका आत्माभिमान आहत होता है। कला समर्पण चाहती है इसलिए लेखक किसी नियमित काम की जिम्मेदारी से मुक्त रहना चाहता है। वह किसी का आश्रय भी स्वीकार नहीं करता। 'एक इंच मुस्कान' के अमर ने इसीलिए अमला का आश्रय स्वीकार नहीं किया। किन्तु लेखक समाज में ही रहता है, उसे आजीविका के लिए कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है–इसीलिए कभी-कभी उसे अनुवाद करने आदि की 'मजबूरी की मजदूरी'[11] करनी पती है। किन्तु अभावग्रस्तता कहीं भी कला सृजन का मार्ग अवरुद्ध नहीं करती। कहीं-कहीं तो वह लेखक की शक्ति भी बन जाती है क्योंकि 'कला महलों में नहीं पलती, अभाव में गति है और गति में प्राण है।'[12]

2. सहजता–राजेन्द्र यादव लेखक के मिथ्या गौरव को महत्त्व नहीं देते। कलाकार बंधनमुक्त रहने के लिए एक ओर नौकरी नहीं करता तथा दूसरी ओर मिथ्या गौरव का शिकार होकर चाट बेचने जैसे कामों को अपमानजनक मानकर नहीं कर पाता। 'देवताओं की मूर्तियाँ' नामक कहानी का नायक उदय तो अभावग्रस्तता के कारण आत्महत्या ही कर लेता है क्योंकि मिथ्या गौरव का शिकार लेखक चाहता है, 'देवताओं की मूर्तियों' की भाँति लोग इन्हें रखकर पूजते रहे, सदा इनकी चिन्ता करते रहे और इन्हें कुछ न करना पड़े।[13] राजेन्द्र यादव ने इस धारणा को निरस्त करने के लिए ही यह कहानी लिखी है।

3. दाम्पत्य जीवन–राजेन्द्र यादव ने सफल एवं प्रख्यात लेखिका मन्नू भण्डारी से विवाह किया और उनका दाम्पत्य जीवन सुखी रहा है। जबकि वे 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास में दो कलाकारों के वैवाहिक जीवन की असफलता का स्पष्टीकरण देते हैं, ''हमपेशा आर्टिस्ट कभी सफल गृहस्थ नहीं हो सकते। दोनों चूँकि कला सृजन की एक जैसी रचना प्रक्रिया से परिचित होते हैं,

विभागाध्यक्ष हिन्दी साहित्य, एस.एस.जी. पारीक (पी.जी.) कॉलेज, जयपुर

इसलिए उनमें एक को दूसरे के प्रति न तो आस्था होती है, न श्रद्धा।[14] किन्तु इस तर्क की मूलभूत कमजोरी यह है कि विवाह का नाता श्रद्धा का नाता नहीं है। वह मित्रता का समस्तरता का नाता है। इसलिए इससे एक-दूसरे की अनुकूलता और पूरकता ही महत्त्व की है।'' अनुकूलता या पूरकता में कला की बाधकता का प्रश्न ही कहाँ उठता है। कला व्यक्ति की सामाजिकता की सुन्दर अभिव्यक्ति है, उसी सामाजिकता की जीवनगत व्यावहारिक अभिव्यक्ति दाम्पत्य में निखरती है। इसलिए कला के लिए समर्पित व्यक्ति के जीवन में दाम्पत्य बाधक ही होगा, यह तर्क समझ से परे की चीज है। यदि दाम्पत्य जीवन का पूरक साथी भी कलाकार ही हो, तो कलाकार को समानधर्मा साथी के सहवास में अपनी कला साधना अधिक उत्साह से चलाने की प्रेरणा घर में ही मिलती रहती है।''[15] राजेन्द्र यादव तथा मन्नू भण्डारी के सफल दाम्पत्य ने 'एक इंच मुस्कान' की अवधारणा को झुठलाया क्योंकि 'लिखना और अधिक इच्छा लिखने का वातावरण बनाने का विश्वास ही हमें निकट लाया था।'[16] 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास में कलाकार के जीवन की इस समस्या पर बड़ी गहराई से विचार किया गया है।

रचना प्रक्रिया–अपने उपन्यास तथा कहानियों में रचना प्रक्रिया पर राजेन्द्र यादव ने सीधे सीधे कोई टिप्पणी नहीं की है किन्तु 'शह और मात' उपन्यास में रचना प्रक्रिया पर उनके गम्भीर विचार उपलब्ध हैं जहाँ वे लेखक के व्यक्तित्व में हर समय किसी न किसी प्रेत छाया का मीडियम बनकर जीने की बात करते हैं। यह बहुत स्वाभाविक प्रक्रिया है कि लेखक जिन्दगी की हर चीज को लिखने की दृष्टि से देखने लगता है और उसका यह देखना अचेतन रूप से भी जारी रहता है। इसलिए लेखक कभी-कभी सहज जीवन से भी दूर हो जाता है। किन्तु जीवन को लिखने की दृष्टि से देखने के लिए एक अलग अन्तर्दृष्टि की जरूरत होती है क्योंकि लेखक के सम्पर्क में आने वाला हर 'कैरेक्टर कोई ताजमहल तो होता नहीं है कि आप गये, गौर से देखा डिटेल्स नोट किये' और घर आकर लिख डाला।[17] इसी निस्संगता की ओर संकेत करते हुए 'शह और मात' के उदय ने लेखक के देखने की बात कही है, ''हम लोग तो जासूस होते हैं। जासूस के समान हममें विषय को पूरी तरह जान लेने की तीव्र और दुर्निवार जिज्ञासा होती है।''[18] इसी तीव्र एवं दुर्निवार जिज्ञासा के कारण लेखक विषय रूपी किले के गहनतम पक्ष तक पहुँचने का वह प्रयास करता है और इसके लिए वह हर सम्भव साधन का प्रयोग करता है। 'किले में घुसने वाले जासूस को इस बात की चिन्ता नहींकरनी चाहिए कि उसकी कमंद रेशम की है या साँप की।'[19] रचना के इन क्षणों में लेखक स्वयं व्यक्ति नहीं होता, वह तो बस 'आदमी का दूत' होता है। आदमी तो उसके अध्ययन का विषय होता है। यह अध्ययन इस सीमा तक निस्संग होता है कि आदमी के अध्ययन की इस प्रवृत्ति के कारण अपने बेटे की मौत के समय भी लेखक के भीतर का बाप जब रो रहा होता है तो वह क्रूर दूत उस समय भी यह अध्ययन कर रहा होता है कि बेटे के मरने पर बाप क्या अनुभव करता है। 'कभी-कभी तो दूत उसे मजबूर कर देता है कि यही जानने के लिए वह अपने बेटे को मारकर देखे।'[20] जीवन को इस निस्संग भाव से देखने की पीड़ा बड़ी त्रासद होती है। 'शह और मात' का उदय सुजाता के अध्ययन करने के लिए चाल चलता है और तटस्थ बना रहता है। इस तटस्थता के कारण लेखक कई बार जीवानानुभूति के जल में डूबने के आनन्द से विभोर होने के तथा तन्मयता के सुख से वंचित रह जाता है। उदय को यह पीड़ा सालती है और उसने इसी पीड़ा को चैखब के 'रीगल' नाटक के लेखक पात्र 'त्रिगोरिन' की पीड़ा के माध्यम से व्यक्त किया है, ''कितनी सालती है, यह व्यथा कि मेरा हँसना रोना....मेरी अनुभूतियाँ और भावनाएँ मेरी अपनी नहीं है....किसी और के दिल की भावनाएँ बनाकर इन्हें टुकड़ें-टुकड़ें में बाँट देना है।''[21] 'शह और मात' की सुजाता, जो स्वयं भी लेखिका है, उदय से यह जानने को उत्सुक है कि उसके उपन्यास की रश्मि कौन है? शायद सुजाता को रश्मि में अपनी छवि दिखायी देती है किन्तु बड़ा लेखक किसी व्यक्ति विशेष को क्षुद्र उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने चित्रण का विषयनहीं बनाएगा, न हर पात्र या घटना से उसके जीवन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध ही होता है। राजेन्द्र यादव ने 'आत्मसाक्षात्कार' कहानी में लिखा है, ''जब आपको अपने लिखे हर पात्र और हर स्थिति की सफाई देनी हो, तो लिखेंगे क्या खाक?''

कला और साहित्य–राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में कला एवं साहित्य के सम्बन्ध में अपनी दृष्टि को जगह जगह स्पष्ट किया है। कला को परिभाषित करते हुए 'कला एवं अहं का विसर्जन' कहानी में वे कहते हैं, ''कला का अर्थ है सुन्दर ढंग अपनी भावनाओं को तुम सुन्दर ढंग से किसी भी प्रकार से रखो, एब कला है।....प्रकृति या पदार्थ में जो कुछ भी मनुष्य अपनी ओर से जोड़ता है, कला है।''[23] इसीलिए वे फोटोग्राफी को कला नहीं मानते क्योंकि उसमें न तो रखने के ढंग की बात आती है, न अपना कुछ जोड़ने की-वह तो अनुकृति है, मात्र बिम्ब।[24] सीधा सा अर्थ है कि सृजन का तत्त्व कला में अनिवार्यतः होता है और यह सृजन तभी सम्भव है जब कलाकार में प्रतिभा हो। इसी कहानी में सुधीर की जीजी कहती है, 'यही विवेक या चुनने की प्रतिभा कला का मूल है।'[25] इसके उत्तर में युवक कहता है कि ''जीजी, कला का उद्देश्य प्रभावोत्पादकता है।''[26] किन्तु कला में वह प्रभावोत्पादकता उसकी गत्यात्मकता से उत्पन्न होती है। फोटोग्राफी में एक भाव या दृश्य को जरा भी आगे ले जाने की सामर्थ्य नहीं है जबकि 'कहानी में प्रभावोत्पादकता है, फिर गत्यात्मकता है। चित्र तुम्हारे नेत्रों द्वारा बोधवृत्ति को जगाभर देता है। किन्तु कहानी तुम्हारी जगी हुई कल्पना द्वारा हृदयगंम होकर तुम्हारी रागात्मक वृत्ति भावनाओं को स्पन्दित करती है-यही कर्म की जड़ है, और इस प्रक्रिया का कारण है उसकी गत्यात्मकता, जो फोटो में नहीं है।'[27] ''यथार्थवादी कहानी लेखक'' कहानी में राजेन्द्र यादव कहते हैं, ''साहित्य समाज की सूक्ष्म से सूक्ष्मतम मनोवृत्ति का प्रतिबिम्ब होता है।''[28] इतना ही नहीं वे साहित्य को समाज के विकास में योग देने का साधन मानते हैं तभी कहते हैं, ''जहाँ तक मनुष्य, समाज और राष्ट्र के धार्मिक और सांस्कृतिक पक्ष की बात है, मैं मानता हूँ साहित्य सबसे बड़ा हथियार है।''[29]

कला और सौन्दर्य–कला का आधारभूत तत्त्व सौन्दर्य चित्रण है। इस सम्बन्ध में राजेन्द्र यादव अपने उपन्यास 'अनदेखे अनजान पुल' में स्थान-स्थान पर टिप्पणियाँ करते हैं। इस उपन्यास की नायिका निन्नी कुरूप है और जब रम्मी से उसे पता चलता है कि दर्शन अपनी

प्रेमिका से विवाह करने को कृत संकल्प है तो उसके स्वप्न टूट गये। साथ ही उसे अपने ऊपर गुस्सा भी आया कि वह यह कैसे भूल गयी कि दर्शन कलाकार है जो 'गंदे पुल से होकर किसी भी सौन्दर्य लोक में जाना गवारा नहीं करेगा।' 'गंदा पुल यानी निन्नी।' इसी चिन्तन के कारण वह दर्शन पर 'जब वह निन्नी का प्रोफाइल बनाने की बात कहता है, बिगड़ जाती है तुम्हें अपनी कला के खिलवाड़ के लिए तो मेरा चाहिए न?'[30] उसे यह भी भय है कि दर्शन निन्नी का प्रोफाइल बनाकर उसके नीचे लिख देगा 'काली कुरूप लड़की।'[31] किन्तु दर्शन को सौन्दर्य की सच्ची पहचान है। सौन्दर्य चित्रण कलाकार के मन की गन्दगी को व्यक्त करने का साधन नहीं है इसीलिए निन्नी के आरोप का वह उत्तर देता है, "जब हम नारी शरीर को माध्यम बनाकर कमनीय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करते हैं तो कला होती है, जब उसे लक्ष्य बना लेते हैं तो सप्रेस्ड या रिप्रेस्ड डिजायर्स (कुंठित वासना) वाली बात आती है।"[32] इसी आस्था का वास्ता देकर दर्शन निन्नी की कुरूपता के कारण उत्पन्न कुण्ठा को दूर करने का प्रयास करता है क्योंकि निन्नी की कुरूपता में भी प्रसन्नता, उत्साह तथा आस्थाजन्य सौन्दर्य है। अपनी बात को और भी स्पष्ट करते हुए उसने अपनी एलोरा यात्रा का विवरण दिया है। "वहाँ आलिंगनबद्ध शिव और पार्वती के चेहरे के सजीव भावों ने मुझे हठात् जादू से बाँध लिया....तब अचानक मन में एक बात कौंधी-मान लिया इन मूर्तियों को बनाने वाले हाथों में कौशल था और उनकी पीठ पर कोड़ा था, इसलिए वे मूर्तियाँ बनाते थे। अंग-प्रत्यंग को अनुपात, सुड़ौलता देते थे।....लेकिन सारे मुख मण्डल पर छाई यह शांति खीझ प्यार क्रोध और होठों से फूटती लजीली मुस्कान को कौन-सा कोड़ा, कौन-सा कौशल पत्थर में उतारने पर मजबूर कर सकता है? बिना मन की उमंग और आस्था के पत्थर के होठों पर वह मुसकराहट कहाँ से आएगी, जो बोलती है....और तन मन को एक गंध की बाँहों में बाँधे रखती है।"[33]

साहित्य और जीवन—राजेन्द्र यादव साहित्य और जीवन का गहरा सम्बन्ध मानते हैं। वे साहित्य में यथार्थ जीवन के अनुभवों को अभिव्यक्त करने पर बल देते हैं। उन्हें कला कला के लिए सिद्धान्त स्वीकार नहीं है तभी तो 'कला और अहं का विसर्जन' कहानी में वे कहते हैं, "भावुकता यह है कि तूने कला और जीवन में इतना भेद क्यों डाल दिया है? फोटो ही लेनी है तुझे, तो मनुष्य से पलायन क्यों? तुमने कला को इतना भीरु क्यों बना दिया है? सुधीर, मेरा कहना मानो, तुम्हें फोटो ही लेनी है तो जीवन की लो, जीवन की उन घटनाओं की जिनमें वह अपने वास्तविक रूप में आया है, यहाँ जीवन की नग्न यथार्थताएँ हैं और मनुष्य उन यथार्थताओं के नीचे विवश है, पिस रहा है, कुछ कर नहीं पाता। वहीं तुम्हें मनुष्य की दुर्दमनीय शक्ति की ओर इंगित करना होगा। वह स्वयं तुम्हारा जीवन भी हो सकता है, या तुम्हारे आसपास किसी का भी।"[34] वे इसी जीवन को कला में अभिव्यक्ति देने के पक्षधर हैं तथा उन्हें जीवन का अकृत्रिम स्वरूप ही आकृष्ट करता है, तभी तो सुधीर से इस कहानी का मैं पात्र कहता है, "जीवन का जितना अकृत्रिम रूप तुम जनजीवन में, जनता में, पा सकते हो, उतना कहीं नहीं क्योंकि वहाँ सभ्यता के पर्दे नहीं होते।"[35] इसीलिए राजेन्द्र यादव 'शह और मात' उपन्यास में कहते हैं, "आदर्श या किसी बाहरी अंकुश की झोंक में मानव हृदय की सच्ची भावनाओं, अनुभूतियों, उनकी संभावनाओं को जान-बूझकर भुला देने को मैं बेईमानी मानता हूँ।"[36] उनके लिए 'यह धरती ही हमारे जीवन का यथार्थ है, हमारी जीवन का सत्य है।'[37] जीवन को इस सत्य से वंचित 'उखड़े हुए लोग' उपन्यास के चंपकजी शाश्वत सत्य और आनन्द को देशबंधु जी से अपनाने का उपदेश पाकर मनोरंजन मात्र को साहित्य समझ बैठते हैं। देशबंधु ने उन्हें कीचड़ में रहकर कमल बनने का उपदेश दिया और वे जब देशबंधु की आवाज में बोलने लगे तो देशबंधु को उनके कमल बनने पर संतोष हुआ होगा।[38] किन्तु मनोरंजन की सामग्री जुटाना साहित्य का काम नहीं है। वह तो जीवन का यथार्थ रूप प्रस्तुत करता है, जनता की आवाज बनकर उन शक्तियों पर प्रहार करता है जो जीवन को कुरूप बना रही है। जब कोई रचनाकार भय से मुक्त होकर 'हजारों लोगों की आवाज समोकर जब आदमी बोलता है तो कैसी भाले सी नुकली और फौलाद सी ठोस आवाज हो जाती है।'[39]

'यथार्थवादी कहानी लेखक' कहानी का नायक भी अपनी यथार्थवादी अवधारणा तथा रचना के प्रभाव की चर्चा करते हुए कहता है कि मनोरंजन कराना कहानी का लक्ष्य नहीं है। "मैं वैसी कहानी लिखने वालों में नहीं हूँ। उसमें है आज की खोखली, साम्राज्यवादी, पूँजीवादी व्यवस्था से मुक्ति के प्रति अडिग पराजेय आस्था। जनता का इस रात्रि की सीमाओं के परे, स्थिर पगों से चले आने वाले उस अरुणविहान में विश्वास।"[40] कहानी की इस अवधारणा को राजेन्द्र यादव ने अपने अनेक निबन्धों में भी व्यक्त किया है। आज की भयावह स्थितियों में उन्हें कला साधना भी असम्भव प्रतीत होने लगी है। क्योंकि 'जब बेकार न करने पर, लगान न देने पर किसी और हुकम-उदूली और गुस्ताखी पर लठैत गरीब रियाया की हड्डी पसलियाँ तोड़ रहे हों, बाहर खुले में लाइन के लाइन लोग मुर्गा बने जूते खा रहे हों, या उलटे लटका कर जब कुछ लोगों को जलती मिर्च की धूनियाँ दी जा रही हों, बाप के सामने पत्नी-बेटी पर बलात्कार किये जा रहे हों या उनके मुँहों में पेशाब पाखाना भरा जा रहा हो तो उस सबसे आँख मूँदें कैसे आप भगवान के कीर्तन पर आठ-आठ आँसू रोते रह सकते हैं-वैसे संगीत के ताल-सुर की बारीकियों पर रीझकर लहालोट हो सकते हैं, कैसे कला और दर्शन की सूक्ष्मताओं में अपनी साधना चलाए रख सकते हैं?'[41] अपनी इस धारणा को वे अपनी कहानी 'कला और अहं का विसर्जन' में भी रेखांकित करते हैं। होटल के पीछे वाले दुमंजिला मकान में आग लग गयी है। नग्मा लपटों से बचती हुई लटकी हुई धोती पर इधर-उधर झूलती हुई चली जा रही थी कि नीचे सुधीर को देखकर वह चिल्लायी, "सुधीर वही परिवार होटल में जल गया है, ऊपर से बच्चे को लाना है। लड़की घायल है-नंगी है, बिना बच्चे के नहीं आएगी।"[42] सुधीर के विचारशून्य मस्तिष्क में फोटोग्राफ जाता है और स्वभाव के अनुसार उसका हाथ कैमरे पर जा पड़ता है और उसे भयानक दृश्य का फोटो लेने लगता है तो त्रस्त युवती का कण्ठ फूट पड़ता है, "अरे, हमें तो यहाँ लपटें खाये जा रही है, हम मर रहे हैं, तुम्हें हमारी तस्वीर उतारकर संसार से वाहवाही

लूटने की चिन्ता पड़ी है, तुम्हें दिखायी नहीं देता।''[43] तो सुधीर धक् से रह जाता है और ''मैंने कैमरे को दो-तीन बार हवा में जोर से हिलाया और सारी शक्ति से उन लपलपाती लपटों में फेंक दिया। फिर सब कुछ भूलकर उस आग की ओर दौड़ा।''[44] राजेन्द्र यादव कला से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण कर्म द्वारा जीवन की रक्षा को मानते हैं क्योंकि बना जीवन के दु:ख दर्द को समझे कला या साहित्य की कोई उपादेयता नहीं है। किन्तु रचनाकार युग सत्य को अभिव्यक्त करके ही जीवित रह सकता है जो रचनाकार फैशन के लिए युग सत्य की सतही बात करते हैं उनका लेखन भी सतही और झूठा होता है। लेखक कोई देवता नहीं होता। वह जिन्दगी में शामिल जीता जागता प्राणी होता है। किन्तु जब लेखक अपने मिथ्याभिमान का झूठा गौरव पाल लेता है तो वह सफल लेखक नहीं बन सकता। 'देवताओं की मूर्तियाँ' कहानी का नायक उदय फैशन के लिए सर्वहारा का पक्षधर बनता है और कहता है कि कोई कब तक छायावादी और रहस्यवादी कविता लिख सकता है। इसलिए आज मैं अपनी समस्त साहित्यिकता के साथ सर्वहारा वर्ग से कदम मिलाए हूँ।[45] किन्तु यही उदय कवि कुमार के चाट बेचने के काम से घृणा करता है। वह केवल मानसिक स्तर पर ही सोचता रहता है और अपने दारिद्र्य से दुखी होकर आत्महत्या कर लेता है तो इसके मिथ्याभिमान की पोल खुल जाती है। ''और ये हमारे कलाकार भी तो न जाने कैसे हैं? ये चाहते हैं कि देवताओं की मूर्तियों की भाँति लोग इन्हें रखकर पूजते रहें, सदा इनकी चिन्ता करते रहे और इन्हें कुछ न करना पड़े।''[46] कला का मूल्य पाने के लिए कलाकार को किसी भी प्रकार के लोभ-लालच से बचने का प्रयास करना चाहिए। इस बात की ओर संकेत राजेन्द्र यादव अपनी 'कलाकार' कहानी में करते हैं। एक बहरूपिया साधु का वेश धारण करता है तो लोग उसे उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं। वह भी सोचता है कि जब साधु बने रहने में ही मुझे आनन्द है तो रोज-रोज बहरूपिया का रूप धारण करने से क्या लाभ? नगर सेठ की बीमार सेठानी को वह स्वस्थ कर देता है-अपनी भभूत से और सेठ को धन त्यागने का उपदेश देता है। सेठ के मन में वैराग्य जागता है और वह अपना सारा धन-वैभव साधु को देने का प्रयास करता है किन्तु साधु उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। दूसरे दिन वह सामान्य वेश में इनाम लेने सेठ के पास पहुँचता है और कहता है, ''मैं साधु वाधु कुछ नहीं आपका सेवक बहरूपिया हूँ। जब आप जैसे चतुर आदमी को मैंने धोखा दे दिया तो मुझे अपनी कला का बहुत बड़ा इनाम मिलना चाहिए।''[47] यहाँ लेखक यह भी रेखांकित करना चाहता है कि सच्ची कला साधना में कोई छल या छद्म महत्त्वहीन है।

कविता और कहानी-राजेन्द्र यादव कविता और कहानी की प्रकृतिगत भिन्नता को अच्छी तरह पहचानते हैं। कहानी लेखक कवि की तुलना में अधिक यथार्थवादी होता है क्योंकि कहानी मूलत: अपनी प्रकृति में भी उतनी हवाई (या अमूर्त) हो ही नहीं सकती क्योंकि उसमें लोग होते हैं उनके संदर्भ और सम्बन्ध होते हैं....वह अनिवार्य रूप से एक सामाजिक विधा है।[48] यही बात 'शह और मात' उपन्यास में सुजाता कहती है, ''कवि आँखें बन्द करके चले तो ठीक है, लेकिन कथाकार को तो आँखें खुली रखनी चाहिए।''[49] इसी उपन्यास में सुजाता एक स्थान पर कहती है, ''गद्य लेखक....कवियों के मुकाबले ज्यादा प्रेक्टिकल होते हैं। उन्हें बहुत सोचना और दुनिया देखनी पड़ती है न।''[50] इन कथनों से भी स्पष्ट है कि राजेन्द्र यादव कहानी को एक यथार्थवादी विधा मानते हैं जिसमें कविता के समान अमूर्तन के लिए अधिक स्थान नहीं है।

निष्कर्ष-राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियों तथा औपन्यासिक रचनाओं में कला, साहित्य, सौन्दर्य चित्रण आदि पर पात्रों के माध्यम से गम्भीरता पूर्वक विचार किया है। वे कलाकार को सामान्य जीवन जीने वाला प्राणी ही मानते हैं तथा उसकी कला साधना को भी यथार्थ जीवन के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। वे साहित्य और जीवन का गहरा सम्बन्ध मानते हैं तथा उनकी दृष्टि में जीवन की समस्याओं से जूझने वाला रचना कर्म ही सच्चा रचनाकर्म है। जीवन से आँखें मूँदकर कोई लेखक बड़ा या महान लेखक नहीं बन सकता।

सन्दर्भ

1. आत्मपरक : स. ही. वात्स्यायन, पृ. 62
2. आत्मपरक : स. ही. वात्स्यायन, पृ. 62
3. प्रेमचन्द की विरासत : राजेन्द्र यादव, पृ. 178
4. प्रेमचन्द की विरासत : राजेन्द्र यादव, पृ. 178
5. हंस, मई 1992, पृ. 8
6. कथाकार राजेन्द्र यादव : चन्द्रभानु सोनवणे, पृ. 21
7. एक इंच मुस्कान : राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, पृ. 63
8. एक इंच मुस्कान : राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, पृ. 87
9. एक इंच मुस्कान : राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, पृ. 68
10. एक इंच मुस्कान : राजेन्द्र यादव : मन्नू भण्डारी, पृ. 300
11. शह और मात, पृ. 77
12. खेल खिलौने, पृ. 113
13. देवताओं की मूर्तियाँ, पृ. 104
14. एक इंच मुस्कान : पृ. 282
15. कथाकार राजेन्द्र यादव : चन्द्रभानु सोनवणे, पृ. 23
16. औरों के बहाने, पृ. 71
17. शह और मात, पृ. 221
18. शह और मात, पृ. 290
19. शह और मात, पृ. 289
20. शह और मात, पृ. 291
21. शह और मात, पृ. 291
22. अपने पार, पृ. 94
23. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 51
24. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 51
25. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 51
26. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 52
27. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 52
28. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 235
29. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 235
30. अनदेखे अनजान पुल, पृ. 56
31. अनदेखे अनजान पुल, पृ. 56
32. अनदेखे अनजान पुल, पृ. 56
33. अनदेखे अनजान पुल, पृ. 251
34. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 52
35. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 52
36. शह और मात, पृ. 164
37. एक इंच मुस्कान, पृ. 224
38. उखड़े हुए लोग, पृ. 303
39. उखड़े हुए लोग, पृ. 347
40. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 234
41. कहाँ हो रहा होगा सूर्योदय, राजेन्द्र यादव, इन्द्रप्रस्थ भारती, जुलाई-सितम्बर 1991, पृ. 7
42. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 59
43. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 59
44. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 59
45. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 83
46. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 89
47. यहाँ तक (पड़ाव-1), पृ. 335
48. मेरी तेरी उसकी बात : राजेन्द्र यादव, हंस फरवरी 1992, पृ. 5
49. शह और मात, पृ. 59
50. शह और मात, पृ. 101